भारतीय चिंतन और दर्शन में पर्यावरण संरक्षण

डॉ. राखी उपाध्याय,

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

कुँजी शब्द – *भारतीय दर्शन, पर्यावरण, प्रकृति, वैदिक काल, पर्यावरण असंतुलन, भारतीय चिंतन*

स्वच्छ पर्यावरण का मुख्य उपभोक्ता हमारा मानव समाज है और यही समाज प्रकृति और पर्यावरण के बीच विकार उत्पन्न करने में पीछे नहीं रहता है। प्रकृति का नियंत्रण नियमित और निर्बाध है। इसमें बाह्य व्यवधान ही असंतुलन उत्पन्न करता है, जिसका विभत्स रूप प्रकृति–प्रकोप, भूकम्प, बाढ़, सूखा तथा महामारी है। बाह्य व्यवधान का सर्जक केवल मानव समाज है, जो आधुनिकतम उपभोक्ता संस्कृति का महत्त्वपूर्ण घटक है। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाना शुरू कर दिया। मनुष्य की अति उपभोक्ता प्रवृत्ति के कारण प्रकृति को इतना नुकसान पहुँचा चुका है कि प्रकृति की मूल संचना ही विकृत हो गई है।

मनुष्य की प्रकृति पर निर्भरता आदि काल से चली आ रही है। इसलिए विश्व की प्रत्येक सभ्यता में प्रकृति का प्रावधान है। प्राचीन भारतीय समाज भी प्रकृति के प्रति बहुत जागरूक था। वैदिक काल में प्रकृति के प्रति मनुष्य की इस असीम श्रद्धा के कारण पर्यावरण स्वतः सुरक्षित था।

प्रकृति और पर्यावरण एक दूसरे के पूरक हैं। कुछ सीमा तक यदि प्रकृति को पर्यावरण और पर्यावरण को प्रकृति समझकर आत्मसात् करें तो कोई अन्तर नहीं होगा। हमारी प्रकृति या फिर हमारा पर्यावरण के उच्चारण से मूल अर्थ या भाव में कोई विरोधाभास नहीं झलकता। क्योंकि, दोनों के सृजन–कारक, तत्त्व एक ही 'पंचभूत' से संबंद्ध हैं। दोनों के अनुशय पर विचार करें, तो हम पायेंगे कि हमारा परिवेश और पर्यावरण प्राकृतिक है।

मनुष्य जिस प्रकृति की पूजा करता था वह उसके प्रति इतना क्रूर भाव कैसे रखने लगा? यह एक विचारणीय प्रश्न है। समय परिवर्तन के साथ–साथ मनुष्य की सोच में भी परिवर्तन आ गया है। प्रकृति के साथ सह जीवन का सह–अस्तित्व की बात करने वाला मनुष्य कालान्तर में यह सोचने लगा कि यह पृथ्वी केवल उसके लिए ही है। अपनी इसी नवीन सोच के कारण वह प्रकृति को पूजा व सम्मान की नहीं, अपितु उपभोग की एक वस्तु के रूप में देखने लगा। उसके विचारों में आया यह परिवर्तन ही पर्यावरण असंतुलन का आधार बना।

पर्यावरण असंतुलन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं लेकिन वे सभी कहीं न कहीं हमारी अनियोजित व अदूरदर्शी–अर्थ नीति से जुड़ हुए हैं। अपनी आर्थिक उन्नति के लिए मनुष्य 'कोई भी कीमत' देने को तत्पर है और उस 'कोई भी कीमत' की सबसे बड़ी कीमत प्रकृति को ही देनी पड़ती है।

प्रकृति पर हमारी निर्भरता इतनी अधिक है कि पृथ्वी के पर्यावरणीय संसाधनों की रक्षा

किए बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। इसीलिए अधिकाँश संस्कृतियाँ पर्यावरण को 'माँ प्रकृति' कहती है और अधिकाँश परम्परागत समाज जानते हैं कि प्रकृति का सम्मान करना उनकी अपनी जीविका की रक्षा के लिए कितना आवश्यक है। इससे ऐसे अनेक सांस्कृतिक कार्यकलाप विकसित हुए हैं जिन्होंने परम्परागत समाजों को उनके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायता दी है। भारत में प्रकृति और सभी जीवित प्राणियों का ध्यान रखना कोई नई बात नहीं है। हमारी तमाम परम्पराएँ इन्हीं जीवन मूल्यों पर आधारित हैं और चौथी सदी ईसा–पूर्व सम्राट अशोक के शिलालखों में कहा गया है कि जीवन के सभी रूप हमारे कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रकृति के सौन्दर्य में पृथ्वी का हर पहलू सिमट आता है, चाहे वह जीवित हो या अजीवित। मनुष्य पर्वत की शान, समुद्र की शक्ति, जंगल की सुन्दरता और रेगिस्तान के विशाल विस्तार को देखकर अंचभित होता है। इन्हीं परिदृश्यों ने और उनमें वानस्पतिक और जंतु जीवन की अपार विविधता ने मनुष्य के जीवन से संबंधित अनेक दर्शनशास्त्रों को जन्म दिया। इसने कलाकारों को दृश्य कलाकृतियाँ दी तथा लेखकों–कवियों को ऐसी रचनाओं के सृजन की प्रेरणा दी है जो हमारे जीवन को जीवन्त बनाते हैं। प्रकृति के माध्यम से हिन्दी साहित्यकारों ने भी विभिन्न विधाओं में हमारी परम्पराओं और जीवन मूल्यों के सौन्दर्यात्मक रूप का चित्रण किया है।

भारतीय चिन्तन में पर्यावरण की कल्पना किसी भौतिक निर्जीव तत्त्व के रूप में नहीं की गई है– यह एक जीवित संसार है और मानव बहुत से जीवित प्राणियों में से एक है। यहाँ प्रकृति की बृहत समष्टि को समझने का निरन्तर प्रयास किया गया है। यहाँ मानव और गैर मानव संसार के मध्य आपसी आदान–प्रदान और सामंजस्य को विशेष महत्त्व दिया गया है और इसे जीवन का महत्त्वपूर्ण निर्देशक सिद्धान्त माना गया है।

भारतीय दार्शनिकों के अनुसार बुद्धि सम्पन्न होने के कारण पर्यावरण की सुरक्षा मनुष्य का मूल कर्त्तव्य है इस प्रयास में पर्यावरण की कोमलता का भी ध्यान रखना चाहिए। ये आदिकालीक ब्रह्माण्डीय दृष्टिकोण दो विभिन्न किन्तु संबद्ध परम्पराओं में पूर्णतः समाविष्ट है– मौखिक एवं शाब्दिक। मौखिक परम्परा अधिकतर व्यवहार पर आधारित होती है जबकि शाब्दिक परम्परा विश्व का सम्पूर्ण और व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

भारतीय शाब्दिक परम्परा कल्पना करती है कि मनुष्य शेष भौतिक विश्व के समान ऐसे तत्त्वों का बना हुआ है जो मृत्यु के पश्चात् विघटित होकर प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। सामान्यतः नौ तत्त्व होते हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, गगन, समय, दिशा, मस्तिष्क और मृदा। भारतीय पुराणों के अनुसार तत्त्वों की उत्पत्ति कई चरणों में होती है। जल, पृथ्वी और आकाश पहले आते हैं। समुद्री जीव और पक्षी दूसरी पंक्ति में आते हैं, पर भूमि का स्थान तीसरा होता है। वायु का स्थान इसके बाद आता है और अग्नि का आगमन अंत में होता है।

भारतीय चिंतन स्पष्ट करता है कि पर्यावरण एक प्रदत्त अस्तित्व है, प्रकृति में उत्कृष्ट है। वह अनुभव करता है कि समस्त प्रकार के जैविक या अ–जैविक पदार्थों में प्राण है। परस्पर सहयोग और निर्भरता पर विशेष बल दिया गया है और यह माना गया है कि मनुष्य का अकेले रहना संभव नहीं है। तथा पर्यावरण से मित्रतापूर्वक व्यवहार रखने से वह सबकी जरूरतें पूरी कर सकता है। वन में निवास करना बहुत अच्छा समझा जाता था जहाँ कोई भी पर्यावरण को उसके अति शुद्ध रूप में अनुभव कर सकता है। नगरीय केन्द्रों में जो अप्राकृतिक और मानव निर्मित में रहने को द्वितीय स्थान प्राप्त था। यह

कल्पना की गई है कि पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाए रखने पर प्रकृति हर एक की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है।

इसी सन्दर्भ में एक बात विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शन के साथ–साथ इस्लाम में भी कुरान प्रकृति को अकसर एक ऐसी पुस्तक कहता है जो स्वयं कुरान का सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय प्रतिरूप है। 18वीं शताब्दी के सूफ़ी विद्वान, अज़ीज अल नसफ़ी प्रकृति की कुरान से तुलना करते हुए कहते हैं कि प्रकृति का प्रत्येक वर्ग कुरान की प्रत्येक सुराह, जाति, उसकी आयत और प्रत्येक प्राणी उसके एक अक्षर के समान है।

मौखिक परम्पराओं से ज्ञान का अशास्त्रीय रूप ज्ञात होता हैं। उनसे हमें उन समाजों को समझने का अवसर भी मिलता है, जिनके बारे में पर्याप्त लिखित सामग्री प्राप्त नहीं है। दिन प्रतिदिन के मानव वार्तालाप में आदिकाल के समाज की झाँकियाँ मिलती हैं। भारत की मौखिक परम्परा में पर्यावरण की एक ऐसे जीवन के रूप में कल्पना की गई है जो साँस लेता है, अनुभव करता है और सुरक्षा प्रदान करता है। पर्यावरण हमारा मित्र है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों को विशेष स्थान दिया गया है। इसका अर्थ है कि पर्यावरणीय शक्तियों के प्रति नम्र रवैया अपनाया गया है और अक्सर इसको धार्मिक अनुष्ठान का रूप दे दिया जाता है।

भारत की मौखिक परम्परा में कथा का विशेष महत्त्व है और इसमें ज्यादातर कथाएँ पशु–पक्षियों से जुड़ी हैं। पशुओं की बहुत सी विशेषताओं की पहचान की गई है और उन्हें इस प्रकार उपयोग में लाया गया है जैसे वे प्राकृतिक विशेषताएँ हों। कई कहानियों में वनस्पतियों का भी उल्लेख मिलता है। यह बात सदैव ध्यान में रखी गई है कि मानव अस्तित्व केवल वनस्पति समूह के द्वारा ही संभव है। धार्मिक ग्रन्थों द्वारा यह भी पता चलता है कि विभिन्न अवसरों पर अलग–अलग पशुओं और वनस्पतियों की पूजा उनके अस्तित्व की रक्षा के लिए की जाती थी।

मौखिक परम्परा में पास्थितिकी मानव प्रकृति को एक ऐसे सत्य के रूप में देखता है जिसका वह प्रत्येक स्तर पर अविभाज्य अंश है। मौखिक देव कथाओं में, मनुष्य की उत्पत्ति को विशेष स्थान नहीं दिया गया है। उसे अपने आप ज्ञान भी नहीं मिला। सामान्यतः मौखिक परम्परा के अनुसार ज्ञान पशुओं और पक्षियों से मिला। प्रकृति प्रेमी मानव ने पूरी सृष्टि के बाद जन्म लिया। वह ज्ञान का सृष्टा नहीं है। ब्रह्माण्डीय बुद्धिमता ज्ञान का स्वतः विद्यमान स्रोत है।

प्राचीन भारतवासियों की मौखिक परम्परा और ज्ञान के अनुसार पृथ्वी दो आधे भागों में विभाजित थी। आकाश और पृथ्वी। आकाश से परे एक दुनिया और भी थी और एक दूसरी पृथ्वी के नीचे। पाँचों तत्त्व दोनों एक दूसरे को रचना की दृष्टि से ढके हुए हैं। इसी प्रकार की रचनाएँ दूसरे विश्व में भी होती हैं।

भारतीय लिखित परम्परा पर्यावरण की कल्पना एक व्यवस्था के रूप में करती है जिसने अनेक जैविक और अजैविक तत्त्वों के जटिल अंतःसंबंधों में तालमेल स्थापित किया है। अजैविक संसार की कल्पना भी ऐसे प्राणी से की गई है जिसमें आत्मा का निवास है। भारतवासियों के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि विश्व में समस्त तत्त्वों के मध्य स्नेहपूर्ण संबंध हैं। अपने पर्यावरण के विभिन्न घटकों के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए बहुत से अनुष्ठान बनाए गए। इन अनुष्ठानों ने यह सुनिश्चित कर दिया कि हम अजैविक विश्व का भी ध्यान रखते हैं और उनसे समन्वय बनाए रखते हैं।

पश्चिमी धर्मों और नैतिक परम्पराओं की पर्यावरण के विषय में केन्द्रीय स्थिति अधिकतर निरंकुश एवं मानव केन्द्रित रही हैं। अतः हर चीज की सृष्टि जो प्रकृति में मौजूद है है वह मानव

जाति के लिए की गई है। मानव जाति के व्यवहार पर कोई नैतिक प्रतिबन्ध नहीं है।

भारतीय दर्शन में पृथ्वी को मातृदेवी समझा जाता है। आकाश की पूजा पिता के रूप में की गई है। पृथ्वी पूजन शीला के रूप में प्रचलित है। यहाँ गैर–मानव जीवित संसार को भी महत्त्व दिया जाता है। मानवीकरण की एक सम्पूर्ण परम्परा है जिसमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और पशु जीवों को विशेष स्थान दिया जाता है। एक क्षीण पश्चिमी परम्परा है जो टियूवर्ड शिप ट्रेडिशन कहलाती है। इसके अनुसार पृथ्वी की देखरेख की जिम्मेदारी मानवता पर है और वह ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। पशु पति महादेव के पूजन की प्राचीन कथा ऐसा ही एक उदाहरण है। पंचतंत्र की कथाओं में भी जीवन जगत को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। पशुओं का मानवीकरण किया गया है। पशु–पक्षियों को केवल भाषा ही नहीं वरन् मानव की संवेदनशीलता को केवल भाषा ही नहीं वरन् मानव की संवेदनशीलता और बुद्धिमता से भी मुक्त किया गया है। इसमें पशु जगत की विशिष्टताओं के माध्यम से समस्याओं को उजागर करके मानव जाति को शिक्षा देने का प्रयास किया गया है। भारतीय दर्शन में अनेक वनस्पतियों और जीवों की प्रजातियाँ और पर्यावरण में मानव के साथ उनके विशेष स्थान को भी उजागर किया गया है। सम्पूर्णता का यह विचार भारतीय दर्शन की एक महान उपलब्धि है।

भारतीय दर्शन में सामान्य रूप से विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक रचनात्मक कार्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकृति के सम्पर्क में आने से सम्पन्न होता है। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर कलात्मक अभिव्यक्ति की भाषा निर्मित होती है। यहाँ तक कि प्रकृति में छोटे से छोटा अंकुर कलाकार के उल्लास का प्रेरणा स्रोत बन जाता है। प्रकृति में किसी वस्तु को व्यर्थ नहीं समझा जाता। कला, व्यक्ति, परिवार और गाँव सम्पूर्ण पर्यावरण का जीवित अंश बन जाता है।

शिव का नृत्य पारिस्थितिकी की सम्पूर्ण व्याख्या है। अग्नि और मृग उनके प्रतीक हैं। वन उनकी लटे हैं, स्वयं गंगा (जल) उनमें समाहित है। सूर्य और चन्द्र उनक जटाओं की शोभा बढ़ाते हैं। साँप उनकी मालाएँ हैं। बाघ की खाल उनका परिधान है। वे अपने डमरू की ब्रह्माणीय लय से सृष्टि की अविराम चक्रीय, अधः पतन पुनरूद्वार और अंततः इस संसार में ज्ञानोदय लाते हैं। शक्ति उनकी ऊर्जा है जिसके बिना वे अपूर्ण हैं। वे स्वयं जो हिमालय की पुत्री हैं जो तप और संयम की प्रतिमूर्ति हैं। यहाँ पर्यावरण से एकात्मकता के साथ अनुशासन और संयम पर भी बल दिया गया है।

भारतीय दर्शन या विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का आरंभ उस शाश्वत जलीय जीवन से प्रकट होता है जो अग्नि की शक्ति पर नियंत्रण रखता हैं भारतीय विज्ञान और दर्शन और इसी प्रकार संस्कृति भी सृजन की निरंतर गति ब्रह्माण्ड अद्यःपतन एवं पुनर्जीवन की अभिधारणा के विकास पर आधारित है।

समस्त परपरागत समाजों की रचनाकार अस्तित्व ओर आकांक्षाओं को अनुशासित करती है। जीवन चार क्रमिक चरणों (आश्रमों) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, संन्यासी और दानप्रस्थ में विभाजित है। हालाँकि ऊपरी तौर पर अपनी प्रकृति में से एक दूसरे से अलग हैं फिर भी इनमें आपसी आदान–प्रदान चलता रहता है और ये एक दूसरे को शक्ति प्रदान करती है। जीवन का चार स्तरीय अनुशासन पुरुषार्थ कहलाता है, अर्थात् एक सांस्कृतिक व्यक्ति पुरुष का निर्माण/चेतना के उच्चतर स्तर पर यह साँस्कृतिक हो जाता है।

किसी ऐतिहासिक या दार्शनिक विवाद में न पड़ते हुए यह कहा जा सकता है कि एक सिद्धान्त ऐसा है जो भारतीय दर्शन में एकता,

दृष्टि में निरन्तरता और प्रत्यक्ष ज्ञान को सुनिश्चित करता है और वह सिद्धान्त है कि मनुष्य पूरी सृष्टि का एक अंशमात्र ही है। मनुष्य का जीवन उन सारी चीजों पर निर्भर है जो उसे चारों तरफ से घेरे हुऐ हैं जैसे निर्जीव खनिज और सजीव जलीय वनस्पतियों और गैसीय जीवन। ये सारी चीजें उसका पोषण करती है अतः मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं को निरन्तर पर्यावरण और पारिस्थितिकी की याद दिलाता रहे।

यदि वह स्वर्ग होगा,

तू जानेगा की प्रकृति,

हर वस्तु के समान

हर स्थान पर सादृश है।

(एफेब्रेडी आलूइवेट, द गोल्डेन वर्सेस ऑफ पाइथा गोरस, न्यूयार्क 1917)

सन्दर्भ सूची

1. कर्सन, आर. : द सी एराउण्ड अस, ओयूपी न्यूयार्क, 1951
2. कर्सन, आर. : साइलेंट स्प्रिंग, हाउटन मिफलिन, न्यूयार्क, 1962
3. मैश, आर : द राईट्स ऑफ नेचर, यूनिवर्सिटी ऑफ बिस्कान्सिन प्रेस, मेडिसन, 1989
4. गाडगिल, माधव और गुहा, पी. रामचन्द्र : द फीशर्स लैण्ड, ऐन इकॉलॉजिकल, हिस्ट्री, ऑफ इण्डिया, ओ.यू., दिल्ली, 1992
5. मिश्र, विद्या निवास (सम्पादित) : क्रीएटिविटी एण्ड इन्वॉयरमेन्ट साहित्य आकदमी, नई दिल्ली, 1992
6. वुल्फगैंग, वेरेनस (सम्पादित) : ऑस्पेकट्स ऑफ इकॉलॉजिकल प्राब्लेम्स एण्ड इन्वायरमेंट अवेयरनेस इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1993

Copyright © 2015, Dr. Rakhee Upadhyay. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.